इकाई 5 स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भूमि और कृषि संबंध

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वतंत्रता के समय कृषि ढांचा

5.3 योजना काल में किए गए प्रयास

5.4 भूमि सुधार और कृषि विकास

- 5.4.1 भूमि सुधारों की अवधारणा, स्वरूप और महत्त्व
- 5.4.2 भूमि सुधारों की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें
- 5.4.3 काश्तकारी सुधार और भू-धारण सीमाएं
- 5.4.4 अधिक छोटी जोतों की चकबंदी
- 5.4.5 गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार के प्रभाव

5.5 वर्तमान बहस और भावी संभावनाएं

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- भारत को स्वतंत्रता के समाय विरासत में मिली कृषि ढांचे की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- विशेष रूप से भूमि और भूसंबंध सुधारने और सामान्य रूप में कृषि विकास पर हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में किए गए विभिन्न पहलों का उल्लेख कर सकेंगे;
- भूमि सुधारों की अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे;
- भूमि सुधार नीति की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों की पहचान कर सकेंगे;
- 1951-1991 के दौरान ''काश्तकारी सुधारों'' के निष्पादन का विश्लेषण कर सकेंगे;

- उन प्रवृत्तियों की समीक्षा कर सकेंगे जिन्होंने 1990 के दशक के बाद भूमि सुधार उपायों के क्रियान्वयन के परिणाम सुझाए;
- वे कारण बता सकेंगे कि भारत में भू-धारण सीमा नीति सफल क्यों नहीं हुई;
- गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार के प्रभाव का आकलन कर सकेंगे; और
- नई दिशाओं का सुझाव दे सकेंगे जिनमें नीति परिप्रेक्ष्य को अभिमुख किया जाना आवश्यक है।

5.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में हमने देखा है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि आधार का शोषण किया। इसलिए पहली भारतीय सरकार को, जिसे स्वतंत्रता के तत्काल बाद बनाया गया था, अर्थव्यवस्था का कृषि आधार सुदृढ़ करने पर विशेष ध्यान पड़ा। मुख्य कार्य भारतीय कृषि के उन संस्थागत तंत्रों की पुनर्संरचना करने के उपाय करने थे जो व्यवस्था में रूढ़ हो गयी सामंतवादी प्रवृत्तियों के कारण कमजोर हो गए थे। इस दिशा में उसके पहले कदमों में एक में 1949 में सरकार ने ''भूमि और काश्तकारी सुधार'' प्रारंभ करने के लिए संवैधानिक प्रावधान किए। चूंकि इन सुधारों को प्रादेशिक संवेदनशीलता को ध्यान में रखकर किया जाना था; इसलिए केंद्र सरकार ने इन सुधारों के अंगीकरण और क्रियान्वयन का कार्य संबंधित राज्य सरकारों पर छोड़ दिया। उत्तरवर्ती वर्षों में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निम्नतम स्तरों पर भूमि सुधार नीतियों के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों को सुसंगत दिशानिर्देश और वित्तीय सहायता प्रदान की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रीय सामाजिक राजनीतिक दबावों द्वारा और राज्य सरकारों द्वारा की गई पहलों की उपलब्धि भिन्न-भिन्न स्तर की हुई। 1990 के दशक के प्रारंभ तक (जब अर्थव्यवस्था का उदारीकरण करने के लिए नीति में मुख्य परिवर्तन की घोषणा की गई) उपलब्धियों का क्या स्तर रहा? इस नई नीति के पथ पर लगभग दो दशाब्दियों तक चलने के बाद देश में कृषि संबंधी आधार की पुनर्संरचना ने कैसी प्रगति की? और, इस संधिकाल में भी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कृषि सेक्टर के सतत् महत्त्व को ध्यान में रखते हुए (अभी भी कुल जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत अपनी जीविका के लिए इस पर निर्भर रहता है) अर्थव्यवस्था का कृषि आधार सुदृढ़ करने के लिए नीति किस दिशा की ओर केंद्रित होनी चाहिए? ये ऐसे मुद्दे हैं जिन पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

5.2 स्वतंत्रता के समय कृषि ढांचा

स्वतंत्रता के समय भारत के सामने बड़ी चुनौती स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान दिए गए वचन के अनुसार अस्तव्यस्त कृषि संबंधों को सही रास्ते पर लाना था। ब्रिटिश शासन से विरासत में जो कृषि ढांचा मिला उसमें भूमि के बहुत बड़े क्षेत्र में जमींदारों का स्वामित्व था जबकि कुल कृषित क्षेत्र का छोटा सा भाग किसान के पास था। स्वतंत्रता के समय भूमि वितरण ऐसा जटिल था कि केवल 7 प्रतिशत भूस्वामियों के पास

कुल भूमि का 53 प्रतिशत था तो 28 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसान (2.5 एकड़ या 1 हेक्टेयर से कम भूमि वाले किसान) कुल भूमि के केवल 6 प्रतिशत के स्वामी थे। भूमिधारण (अर्थात् अवधि और शर्तें जिनके अधीन पटट्ेदार को बटाई फसल के आधार पर खेती करने के लिए भूमि पट्टे पर दी गई) और प्रशासनिक रीतियां देश भर में पर्याप्त भिन्नतापूर्ण हैं। परन्तु मोटे तौर पर, जैसा कि पिछली इकाई में उल्लेख किया गया है, जो व्यवस्था विद्यमान है, उसे दो शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे (i) जमींदारी और (ii) रैयतवारी प्रथाएं। यद्यपि जमींदारी प्रथा का विभेद बहुत से बिचौलियों (अर्थात् राज्य और वास्तविक भूमि जोतने वाले किसानों के बीच) द्वारा किया जाता है, रैयतवारी प्रथा में कम से कम उसके ढांचे में किसान का स्वामित्व स्पष्ट था। फिर भी, व्यवस्था ने न केवल जोतों को अलाभकर आकार तक घटाया बल्कि इसने उच्चतर लाभ के लिए संसाधनों के किसी प्रकार के निवेश का प्रोत्साहन भी समाप्त किया।

इस पृष्ठभूमि के विपरीत सामाजिक समानता प्राप्त करना और आर्थिक वृद्धि सुनिश्चित करना, ये दो उद्देश्य नए भारत सरकार की प्राथमिकता थी। स्वतंत्रता के समय कृषि ढांचे की निम्नलिखित विशेषताएं थीं (i) परजीवी किराया लेने वाले बिचौलिए; (ii) राज्यों में विद्यमान भिन्न-भिन्न भू-राजस्व/स्वामित्व व्यवस्थाएं; (iii) भूमि के बहुत बड़े भाग पर कम जमींदारों का अधिकार एवं शोषणकारी बटाई आधार पर भूमि पट्टे पर देना; और (iv) वास्तविक पट्टेदार किसानों की बहुत बड़ी संख्या; जो शोषणकारी उत्पादन संबंधों के साथ असुरक्षित पट्टेदारी शर्तों के अधीन कार्य कर रहे थे। इसलिए नीति निर्माताओं को निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण मुद्दों का सामना करना पड़ा (i) नए पट्टेदारी अनुबंध लागू कर बिचौलियों का उन्मूलन, जिससे किसान अधिक अच्छे उत्पादन तरीके/पद्धतियां अपनाने के लिए प्रेरित हो सके; और (ii) भूमि रिकार्डों का पुनः लेखन, (जो अत्यधिक खराब स्थिति में थे और जिनके कारण बहुत भारी संख्या में मुकदमेबाजी होती थी)।

बिगड़ी हुई स्थिति को ठीक करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 के अधीन प्रावधान किया गया है कि देश के भौतिक संसाधनों (मुख्यतया भूमि) के स्वामित्व और नियंत्रण का सामान्यहित संवर्धन के लिए पुनः वितरण किया जाए। इस लक्ष्य को लेकर पंचवर्षीय योजनाओं की श्रृंखला के माध्यम से नीति दिशानिर्देश निर्धारित करने के लिए ''राष्ट्रीय योजना आयोग'' स्थापित किया गया। नई ''भूमि नीति'' प्रारंभ करना, उसकी सभी योजनाओं में समावेश किया जाने वाला महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। इसलिए तैयार की गई और क्रियान्वित की गई योजनाओं का मोटे तौर पर उद्देश्य थाः (i) आय और संपति में असमानता कम करना (ii) पट्टेदारों को सुरक्षा प्रदान कर शोषण का उन्मूलन करना और इसके द्वारा (iii) विकास की पहल में सहभागिता करने के लिए समाज के सभी वर्गों को समान अवसर सुलभ कराना।

5.3 योजना काल में किए गए प्रयास

भारत की ''भूमि नीति'' स्वतंत्रता के बाद जिन चार पृथक-पृथक प्रावस्थाओं से गुजरी है, न उनकी पहचान करना संभव है। ये प्रावस्थायें हैंः (i) पहली प्रावस्थाः वर्ष 1951-74 के दौरान मुख्यतया ''भूमि सुधार'' पर ध्यान केंद्रित किया गया,

(ii) दूसरी प्रावस्था 1974-84 की अवधि के दौरान, ध्यान बदलकर कृष्य भूमि बढ़ाने पर बल दिया गया (इसमें अकृष्य भूमि को कृषि के अंतर्गत लाया गया) (iii) तीसरी प्रावस्था: (1985-97) इसमें ''जल और मृदा संरक्षण'' की ओर ध्यान दिया गया, और (iv) चौथी और वर्तमान प्रावस्था : (अर्थात् 1997 से आगे): भूमि कानूनों की आवश्यकता के बारे में विचार विमर्श पर ध्यान केंद्रित रहा। अंतिम प्रावस्था विधायी उपायों द्वारा क्रियान्वयन के चार से अधिक दशाब्दियों के दौरान वांछित भूमि संसाधनों के अपर्याप्त पुनर्वितरण की समीक्षा पर बल दिया गया है। प्रगति के अभाव की तुलना छोटे और सीमांत किसानों की दशा में सुधार लाने में ''जनांकीय और आर्थिक शक्तियों'' की प्रभाविकता से की गई है। अगले अनुच्छेदों में हम उनका समाधान करने के लिए अपनाए गए संकेंद्रित विशिष्ट मुद्दों और नीति विवरण द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं में किए गए पहल कार्यों की (संक्षेप में) समीक्षा करेंगे।

पहली प्रावस्था (पहली योजना से चौथी योजना तक) 1951-1974

पहली योजना (1951-56) में मुख्य मुद्दा कृषि के अधीन क्षेत्रफल बढ़ाना था। इसके लिए, विशाल अकृष्य भूमि, (बड़े आकार के जोतों में घिरी हुई भूमि) को कृषि के अंतर्गत लाना था। गांव के आम आदमियों को सामुदायिक विकास (CD) नेटवर्क के अधीन लाना था। इन्हें प्राप्त करने के लिए भूमि सुधार में इन बातों पर बल दिया गया था : (i) बिचौलियों का उन्मूलन (ii) पट्टेदार किसानों के भूमि अधिकार बहाल करना, और (iii) भूमि उपयोग दक्षता बढ़ाना। दूसरी योजना (1956-61) में सिंचाई बढ़ाने पर अधिक बल देकर वर्षा प्रधान सिंचाई पर निर्भरता कम करना था और निम्न भूमि उत्पादकता को बढ़ाने पर भी ध्यान केंद्रित करना था। तीसरी योजना (1961-66) में ''खाद्य सुरक्षा'' पर फोकस था। इसके लिए कृषि योग्य बंजर भूमि को कृषि के अधीन लाने और पिछड़े क्षेत्रों को मुख्य धारा में लाने पर बल दिया गया। खाद्य सुरक्षा पर लगातार आग्रह के कारण ही चौथी योजना (1969-74) में भी खाद्यान्न फसलों के लिए भूमि के अधिक प्रयोग के लिए प्रोत्साहन तय किये गए। इसलिए दूसरी से चौथी योजना तक नीति का बल इस पर था: (i) सामुदायिक विकास के माध्यम से प्रशिक्षण और विस्तार सेवाओं का विस्तार, (ii) लघु और बड़ी सिंचाई परियोजनाओं द्वारा सिंचाई सुविधाओं का विकास; (iii) ''क्षेत्र विकास'' और ''मृदा संरक्षण'' से भूमि नीति दृष्टिकोण को जोड़ना; और (iv) ''भूमि की उच्चतम सीमा'' निर्धारण अधिनियमों का क्रियान्वयन।

दूसरी प्रावस्था (पांचवीं और छठी योजना) 1974-1985

दूसरी प्रावस्था में पांचवीं योजना अवधि (1974-79) के दौरान फोकस 'निम्नकोटि भूमि प्रबंधन' के मुद्दे के समाधान पर था। इसके अधीन नीति का बल सूखा-प्रवण और मरुस्थल क्षेत्र कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के इर्दगिर्द केंद्रित था। छठी योजना (1980-85) के दौरान अल्प प्रयुक्त भूमि संसाधनों के विकास पर फोकस जारी रखने के अलावा, उन क्षेत्रों के लिए ''हरित क्रांति'' की सुलभता का विस्तार करने पर भी ध्यान था। नीति का आग्रह ''भूमि और जल प्रबंधन कार्यक्रमों'' के क्रियान्वयन पर था।

तीसरी प्रावस्था (सातवीं और आठवीं योजना) 1985-1997

सातवीं योजना अवधि (1985-90) के दौरान ''मृदा संरक्षण प्रबंधन और भूमि निम्नीकरण'' का सामना करने पर फोकस था। नीति का आग्रह बंजर भूमि विकास के अलावा भूमि प्रबंधन के दीर्घकालिक उद्देश्य पर था। आठवीं योजना (1992-97) में मुख्य मुद्दा ''शुष्क भूमि और वर्षा आश्रित क्षेत्रों'' के विकास पर ध्यान केंद्रित करना था। ग्राम स्तर पर ''भूमि प्रबंधन में लोगों की सहभागिता'' पर विशेष प्रयास किए गए। इसलिए नीति का जोर कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना के साथ जल विभाजक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर था।

चौथी प्रावस्था (नौंवी योजना से आगे)

नौंवी योजना अवधि (1997-2002) में अभी तक प्रारंभ किए गए भूमि सुधारों की उपयोगिता पर पुनः विचार किया गया। कृषि वृद्धि मंदगति की दशा में पहुंच गयी थी और वास्तविकता यह है कि हरित क्रांति कुछ ही राज्य से बाहर फैलने में असफल रही, यह आलोचना की गई थी कि भूमि की उच्च सीमा निर्धारण और काश्तकारी कानूनों ने अपने अभिप्रेरित प्रयोजन पूरे नहीं किये, ये प्रति उत्पादक सिद्ध हुए हैं और इन्होंने केवल भूमि बाजार को समाप्त किया है। फिर भी अप्रयुक्त भूमि को कृषि के अधीन लाने के प्रयास जारी रहे। ग्रामीण भूमि का प्रबंधन करने के लिए ''पंचायत राज संस्थाओं'' के सशक्तीकरण के साथ विकेंद्रीकृत भूमि प्रबंधन व्यवस्था पर बल दिया गया।

उपर्युक्त संक्षिप्त समीक्षा संकेत देती है कि स्वतंत्रता के 50 वर्षों के बाद भी मूल मुद्दा भूमि संसाधनों के न्यायसंगत वितरण के इर्दगिर्द ही घूम रहा है। फिर भी, भूमि नीति ने भूमि सुधारों की नई प्रावस्था की आवश्यकता पर नई बहस के लिए अपने रुख में परिवर्तन किया है। समस्त पंचवर्षीय योजनाओं का केंद्रीय मुद्दा ''भूमि नीति'' था जिसका फोकस उसके ''पुनर्वितरण'' और ''इष्टतम उपयोग'' दोनों पर था। ऐसा नहीं है कि पांच दशकों के प्रयास पूरी तरह से असफल रहे। परन्तु उसकी सफलता संभावनाओं और वास्तविक परिणाम के बीच भारी अंतर के साथ क्षेत्र विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित रही है। इसे समझने के लिए, हमें अब भूमि सुधारों के अधीन किए गए निश्चित प्रयासों का आकलन करना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) ठोस कृषि ढांचा स्थापित करने के लिए भारत की पहली सरकार के दो उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। दो महत्त्वपूर्ण मुद्दे बताइए, जिनसे सरकार को इस संबंध निपटना था।

.....

.....

.....

2) भारत ने कृषि ढ़ांचे में वांछित परिवर्तन करने के लिए नवगठित ''योजना आयोग'' के तीन लक्ष्य/उद्देश्य क्या थे?

.....

.....

.....

.....

3) भारत की ''भूमि नीति'' की मोटे तौर पर निर्धारित चार प्रावस्थाओं की पहचान कीजिए। क्या बाद में मुख्य धारा से कुछ बदलाव आया है? क्यों?

.....

.....

.....

.....

4) पहली चार पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान नीति के चार प्रमुख आग्रहों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.4 भूमि सुधार और कृषि विकास

पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों की सीमाओं के अंतर्गत और कार्यक्रमों के अनुसार उन्हें प्राप्त करने के लिए निश्चित सुस्पष्ट नीति बल, आग्रह, भूमि पुनर्वितरण और प्रबंधन पर रहा। इसी की संक्षिप्त चर्चा पिछले भाग में की गई है। इसे करने में हमने ''भूमि नीति'' और ''भूमि सुधार'' शब्दों का प्रयोग पर्याय स्वरूप में किया है। इसका कारण यह है कि ये परस्पर इतने घुले मिले हैं कि भारत की भूमि नीति योजना और क्रियान्वयन के संदर्भ में दोनों को प्राय: पर्यायवाची रूप में समझा गया है। फिर भी, हम अब उनके अर्थ और परिभाषा का विस्तार करते हुए अधिक विशेष रूप से विचार करेंगे। बाद में हम उसके अन्य आयामों विचार करेंगे: (जैसे स्वरूप और महत्त्व)। खेत/जोत का आकार अवधारणा, के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों की समीक्षा भी हम करेंगे। साथ ही भूमि जोतों पर उच्चतम सीमा कानून, आदि भारत में की गई प्रगति का मूल्यांकन भी किया जाएगा।

5.4.1 भूमि सुधारों की अवधारणा, स्वरूप और महत्त्व

वैचारिक दृष्टि से ''भूमि सुधार'' शब्द का संबंध भूमि से मनुष्य के संबंध को शासित करने वाले संस्थागत ढांचे में परिवर्तन से है। संस्थागत ढांचे का संबंध भूमि स्वामित्व कानूनों, विनियमों या रीति रिवाजों से है। नोट करें कि ''रीति रिवाज'' शब्द का प्रयोग करने से परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले अनौपचारिक तरीकों पर

भी उस सीमा तक विचार किया गया, है जहां तक वे वांछित दिशा में परिवर्तन ला सकते थे। अधिक सरल शब्दों में, भूमि सुधार का संबंध बुनियादी तौर पर धनियों से गरीबों को कृषि प्रयोजनों के लिए भूमि का पुनर्वितरण से है। भारत में कृषि विकास के संबंध में देश में अधिक तर्कसंगत कृषि ढांचा लाने के लिए इसे सरकार प्रेरित नीति के रूप में समर्थन प्राप्त हुआ है।

भूमि सुधारों के लिए आर्थिक तर्काधार का विस्तार दो कारणों से किया गया है: (i) उन भूमिहीन गरीबों के लिए उत्पादन के माध्यम के रूप में, जिनके लिए भूमि का एक छोटे टुकड़े पर अपने स्वामित्व का अभिप्राय है, अपने और अपने परिवार के जीवन निर्वाह का आवश्यक खाद्यान्न उत्पादन कर आवश्यक बुनियादी आर्थिक संसाधन प्रदान करना; और (ii) (जिस भूमि पर ''मानवीय प्रयासों'' का निवेश किया गया है, उससे) बिक्री/लाभ द्वारा आय अर्जन के लिए अधिशेष उत्पादन को प्रोत्साहन करना ताकि उस पर परिश्रम करने वाला व्यक्ति लाभ प्राप्त कर सके। दूसरे स्तर पर यह स्वीकार करना आवश्यक है कि अत्यधिक गहन राजनीतिक प्रक्रिया अंतर्निहित है जिसके लिए सभी प्रमुख राजनीतिक दलों का सक्रिय सहयोग बहुत आवश्यक है। इस तथ्य को ध्यान रखना होगा कि भूमि अधिकारों के पुनर्वितरण क्षेत्र में समुदायों में और उनके बीच संबंध बदल सकते हैं जो सामाजिक-राजनीतिक समीकरणों के माध्यम से निर्वाचन परिणामों पर असर डाल सकते हैं। तथ्य से यह भी स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद संवैधानिक प्रावधानों के क्रियान्वयन को संबंधित राज्य सरकारों पर छोड़ देना क्यों विवेकपूर्ण समझा था। प्रांतीय सरकारें जाति तथा सामाजिक संवेदनशीलताओं का सामना अधिक अच्छी तरह से कर सकती थीं। इसलिए भूमि सुधार का आर्थिक महत्त्व उसके दो महत्त्वपूर्ण आयामों में निहित किया जा सकता है, जैसे- (i) **समानता:** जिससे भूमि का प्रयोग बुनियादी संसाधन के रूप में गरीब, अकुशल ग्रामीण श्रमिकों द्वारा गरीबी का सामना करने के लिए किया जाता है; और (ii) **दक्षता** जिससे अधिक उत्पादन के लिए अभिप्रेरणा या प्रोत्साहन जैसे अमूर्त कारकों से गरीब किसान द्वारा जोती गई भूमि पर स्वामित्व अधिकार अंतरण आदि का ध्यान रखा जाता है। अब हम जोत आकार-उत्पादिता के विषय में दो अवधारणाओं पर अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

5.4.2 भूमि सुधारों की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

जोत का आकार परिकल्पना और ''पटट्ेदार-दक्षता परिकल्पना'' नाम की दो अवधारणाएं कुछ अनुभवजन्य प्रेक्षणों पर आधारित हैं। पहली अवधारणा यह इस प्रेक्षण पर आधारित है कि ''छोटे किसान अधिक पैदावार देते हैं, अर्थात्, उत्पादन और जोत के आकार में विपरीत संबंध है। इस प्रेक्षण में यह तथ्य अस्पष्ट है कि अधिक छोटे खेतों पर केवल परिवार का श्रम काम करता है या यदि बाहरी श्रम भी प्रयोग होता है, तो उसमें प्रभावशाली पर्यवेक्षण आवश्यक होगा, अधिक बड़े खेतों में बाहर से भाड़े पर मजदूर लेना आवश्यकता होगी। दूसरी परिकल्पना ''पटट्ेदार दक्षता परिकल्पना'' कहलाती है, वह दो अनुभवजन्य प्रेक्षणों पर आधारित है कि: (i) अधिक बड़े खेतों के मालिक जमींदार साधारणतया स्वयं खेती नहीं करते हैं बल्कि बटाई फसल व्यवस्था पर आसामी किसानों को अपनी भूमि पट्टे पर देते हैं; और (ii) बटाई फसल व्यवस्था, अपने स्वरूप में शोषणकारी होती है, और, आसामी को सही

परिश्रम करने की प्रेरणा को समाप्त करने वाली होती है। काश्तकार मालिक के पास (अर्थात् काश्तकार को दिए गए छोटे फार्म का स्वामित्व अधिकार जिस पर वह स्वयं खेती कर सकता है) बटाईदार की अपेक्षा अधिक मेहनत करने के लिए प्रोत्साहन होता है।

नोट कीजिए कि 'पटट्ेदार दक्षता परिकल्पना' में अधिक उत्पादन करने के लिए या 'खेत का आकार परिकल्पना' से संबद्ध उच्चतर उत्पादन उपज दोनों ही प्रोत्साहनों से जुड़े हुए हैं। इनमें उत्पादन अधिक से अधिक करने का ही मुख्य मुद्दा है। भूमि सुधार के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि राज्य नियामक के रूप में कार्य करें। ये दो परिकल्पनाएं (शैलीबद्ध तथ्यों के नाम से भी जानी जाती हैं) प्रश्न उठाती है ''क्या ऐसी नीतियां बनाई जा सकती हैं कि बाजार की शक्तियां अधिकतम उपज पैदा करने के लिए (या विकल्पत: उत्पादकता हानि न्यूनतम करने के लिए) अपेक्षित प्रेरणा उत्पन्न कर सकती हैं? दूसरे शब्दों में यद्यपि ''किराया निष्कर्षण'' (अर्थात् बटाई फसल व्यवस्था का शोषणकारी स्वरूप) और ''प्रोत्साहन समझौता'' (अर्थात् यदि आसामी को उसकी भूमि के लिए स्वामित्य अधिकार द्वारा अधिशेष उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन का प्रस्ताव दिया जाता है) व्याख्याएं उपयुक्त दोनों परिकल्पनाओं के लिए तर्क देती हैं, फिर भी क्या ''छोटी जोतों'' में 'काश्तकारी अधिकारों' की प्रभाविकता के लिए आगे अन्य कोई व्याख्या उपलब्ध है? इस प्रश्न का उत्तर उन मूल कल्पनाओं में स्थित है जो शैलीबद्ध तथ्यों को नियंत्रित करती हैं। उदाहरण के लिए, भूमि की गुणवत्ता समरूप नहीं है और सभी किसानों की योग्यताएं/कुशलताएं भी समरूप नहीं हैं। इसका तात्पर्य यह है कि समरूपता परिकल्पना की दशा में दो परिकल्पनाएं अधिक लाभ या उत्पाद सुनिश्चित कर सकती हैं। परन्तु चूंकि ऐसी कल्पनाएं विरले ही सही सिद्ध होती हैं, इसलिए उच्चतर उत्पादन प्राप्ति की प्राय: अनदेखी हो जाती है। इस प्रकार कारकों की समरूपता की दशाओं में 'भूमि सुधार' के मामले प्रोत्साहित किए जा सकते हैं परन्तु उस सीमा तक ही कि कारकों की समरूपता आवश्यक रूप से विद्यमान है। यदि विषमरूपता विद्यमान होगी तो भूमि सुधार उपाय कम प्रभावकारी होंगे। इसलिए नीतिगत चुनौती समुचित संस्थागत तंत्र से उपयुक्त प्रोत्साहन स्थापित करना है ताकि बाजार में उच्चतर उत्पादकता के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकें।

उपर्युक्त संदर्भ में पेरुवियन अर्थशास्त्री, हेरनाडों डी सोतो द्वारा दिए गए तर्क को नोट करना प्रासंगिक है। वर्ष 2000 में प्रकाशित अपने प्रकाशन ''दि मिस्ट्री ऑफ कैपिटल'' में सोतो ने यह मत प्रस्तुत किया कि राज्य द्वारा गरीब किसान को ''संपत्ति अधिकार सुनिश्चित करने से संस्थागत ऋण पाने की किसान की क्षमता बढ़ जाती है। इससे गरीब किसानों की अपना कल्याण स्वयं करने की क्षमता सुधरती है। साथ ही वे गरीबी उन्मूलन और आर्थिक वृद्धि संवर्धन की प्रक्रियाओं में भी अपना योगदान कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, उपयुक्त संस्थाओं की स्थापना समानता और दक्षता के दोनों मुद्दों को सुनिश्चित कर सकती है। परन्तु चूंकि काश्तकारी/भूमि सुधार राजनीतिक समर्थन के बिना सफल नहीं हो सकते हैं, इसलिए साथ-साथ ''राजनीतिक सुधारों'' के सहारे ''संस्थागत सुधारों'' पर कार्य करना आवश्यक है। तब दोनों साथ-साथ ''भूमि सुधारों'' की सफलता के लिए आवश्यक दशाएं सुनिश्चित करेंगे।

अच्छा राजनीतिक और संस्थागत ढांचा स्थापित करने के लिए राजनीतिक और संस्थागत सुधारों की दो शर्तों की पहचान की गई है, क्योंकि भूमि सुधार की सफलता के लिए इन शर्तों की अनिवार्यत: किसी भी देश/संदर्भ पर लागू होती हैं। भारत के सदंर्भ में इन दो व्यापक कारकों से संबद्ध, उन विशिष्ट कारकों की पहचान की जा सकती है जिनका भूमि सुधार उपायों के घटिया निष्पादन में योगदान रहा है। जैसाकि आप देखेंगे, इन कारकों को उपर्युक्त दो व्यापक कारकों में समाहित किया जा सकता है, परन्तु उनका सुस्पष्ट उल्लेख उस स्थिति का साफ चित्र देता है जो भारत में प्राप्त हुआ है। **पहला** ''नीचे से दबाव'' का अभाव है। इसका संबंध असंगठित से है और ये गरीब किसानों की निष्क्रियता/अस्पष्ट आवाज है जो भूमि सुधारों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए पूर्व शर्त भी है। यह मुख्यतया गरीबों की लड़खड़ाती सामाजिक और आर्थिक दशा के कारण हो सकता है, जिसे केवल लंबी अवधि तक संगठन प्रयासों से सुधारा जा सकता है। **दूसरा** ''प्रशासनिक उदासीनता'' है। ऐसे उपयुक्त प्रशासनिक संगठन बनाने के लिए आवश्यक प्रयासों की सामान्यत: अनदेखी हुई है जो ऐसे प्रणालीबद्ध सुव्यवस्थित सेवाकालीन प्रशिक्षण से संबद्ध हो जो भूमि सुधारों के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है। प्रशासनिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण पदों पर भूमि सुधार में विश्वास रखने वाले योग्य और समर्पित व्यक्तियों को नियुक्त करने के लिए सतर्क प्रयासों का नितांत अभाव रहा है। बहुत कम मामलों में, जहां कुछ अधिकारियों द्वारा कुछ कार्रवाई की गई थी, उन्हें जल्दी में स्थानांतरित कर दिया गया। ये प्रशासनिक निष्क्रियता/विफलता का प्रमाण है। **तीसरा** कारक ''सही और अद्यतन भूमि रिकार्ड का अभाव है''। यह सूचना प्रणाली में कमियों से जुड़ा हुआ है जो कमजोर और अनियमित हैं। **चौथा** वृहद समवर्ती मूल्यांकन पर कम ध्यान दिया गया है जिसके अभाव में अवरोधों की पहचान करना और समय पर उपचारी उपाय करना संभव नहीं हुआ है। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि ये सभी कारक, राजनीतिक और संस्थागत कमजोरियों के ही अंग हैं जिन्हें हटाने के लिए इन दो मुख्य क्षेत्रों में सुधार ही भूमि सुधारों का प्रभावशाली क्रियान्वयन सुनिश्चित कर पाएंगे।

बोध प्रश्न 2

50 शब्दों में अपना उत्तर दीजिए।

1) मूल रूप से ''भूमि सुधार'' शब्द क्या संकेत देता है?

.....

.....

.....

.....

2) वे दो कारण बताइए जिन पर ''भूमि सुधार'' उपायों के लिए आर्थिक तर्क उपयुक्त ठहरते हैं?

.....

.....

.....

.....

3) वे दो तर्क क्या हैं जिन पर भूमि सुधार उपायों की दक्षता के लिए दो परिकल्पनाएं दी गई हैं? इन तर्कों के मूल में बुनियादी कल्पना क्या है जिनके अधीन दो परिकल्पनाओं के उपयुक्त ठहरने की आशा की जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

4) आप के विचार से जहां कारकों की विषमता अपरिहार्य वास्तविकता हो 'समानता' और 'दक्षता' की समस्याओं का उत्तर क्या होगा?

.....

.....

.....

.....

5) चार विशिष्ट कारक बताइए जिन्होंने भारत में भूमि सुधारों के सफल क्रियान्वयन में बाधा डाली है।

.....

.....

.....

.....

5.4.3 काश्तकारी सुधार और भू-धारण सीमाएं

भारत में भूमि सुधार कानून में चार मुख्य घटक हैं: (i) बिचौलियों का उन्मूलन, (ii) ठेका शर्तों का सुधार करने के उद्देश्य से काश्तकारी विनियमन (फसल बटाई सहित) (iii) गरीबों को अतिरिक्त भूमि पुनर्वितरण की दृष्टि से भू-धारण की सीमा का निर्धारण। और (iv) कई छोटे-छोटे अलाभकर जोतों की चकबंदी। इनमें से बिचौलियों का उन्मूलन, जो 1960 तक पूरा किया गया था, भारत में भूमि सुधार प्रक्रिया का अधिक सफल घटक माना गया है। अन्य के संबंध में हुई प्रगति भिन्न-भिन्न है। राजकृष्ण (1961) ने भूमि सुधार उपायों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है, अर्थात् (i) विमुक्तिकारी, (ii) वितरणात्मक (iii) संगठनात्मक और (iv) विकासात्मक। यद्यपि बिचौलिये उन्मूलन विमुक्ति श्रेणी के अधीन काश्तकारी सुधार और सीमा निर्धारण विमुक्ति और वितरणात्मक उपायों के अधीन आता है, उन्हें अधिक स्तर पर उपलब्ध करने के लिए प्रौद्योगिकी प्रगति का प्रयोग और ''विस्तार सेवाओं'' का विस्तार क्रमशः संगठनात्मक और विकासात्मक श्रेणियों के अधीन आता है।

काश्तकारी सुधार के मुख्य घटक पांच थे (i) भू-धारण की सुरक्षा (ii) काश्तकारी

की समाप्ति (पुराने से विमुक्ति और नए के लिए स्वतंत्रता) (iii) जमींदार द्वारा व्यक्तिगत खेती के लिए पुनर्ग्रहण की अनुमति (iv) किराये का विनियमन और (v) स्वामित्व अधिकारों की पुष्टि। विभिन्न राज्य कानून 1960 और 1972 के बीच बनाए गए। परन्तु भिन्न-भिन्न राज्यों में कृषि ढांचे का असमान और जटिल स्वरूप होने के कारण कोई एकसमान दिशानिर्देश नहीं बनाए जा सके। वास्तव में, भू-धारण सुधारों की नीति पर कोई सर्वसम्मति न तो जमींदारी प्रथा का पूर्ण स्वामित्व हरण के पक्ष में बनी और न ही पूर्णत: काश्तकारों के हित में। फिर भी राष्ट्रीय दिशानिर्देशों (1972 के बाद) में राज्यों द्वारा अंगीकृत करने के लिए निम्न उपाय सम्मिलित किए गए थे:

- वास्तविक जोताई करने वाले किसान को काश्तकारी की सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए;
- बटाई फसल के लिए सकल उत्पाद का 20 से 25 प्रतिशत की सीमा में किराया नियत किया जाना चाहिए,
- भू-स्वामियों के ''दूरवासी जमींदारी प्रथा'' को हतोत्साहित करते हुए व्यक्तिगत प्रयोग के लिए भूमि पर खेती करने की अनुमति होनी चाहिए;
- पारस्परिक सहमति से काश्तकारी अधिकार छोड़ने की अनुमति दी जाए,
- कुछ विशिष्ट क्षेत्रों के मामले में, जमींदार काश्तकार संबंध समाप्त किए जाएं और काश्तकार किसान को सीधे राज्य के अधीन लाया जाए,
- अशक्त अपंग व्यक्तियों, रक्षा कर्मियों आदि को अपनी भूमि पट्टे पर देने की छूट दी जाए,
- जहां कहीं जमींदारों को काश्तकार हटाने और स्वयं खेती करने की अनुमति दी जाती है, वहां ''व्यक्तिगत खेती'' स्पष्ट रूप से परिभाषित की जाए, और
- मौखिक काश्तकारी समाप्त की जाए तथा काश्तकारी रिकार्ड यथा विधि रखे जाएं।

काश्तकारी पर पूर्ण या लगभग पूर्ण प्रतिबंध पर बहस

''काश्तकारी पर पूर्ण या लगभग पूर्ण (आंशिक) प्रतिबंध का मुद्दा (जैसा कि कुछ राज्यों में प्रयास किया गया था) भारत में सभी मुद्दों में से सबसे अधिक विवादास्पद रहा है। मुख्य मुद्दा उन शर्तों के अधीन जमींदारों को अपनी भूमि पट्टे पर देने से रोकना था जो काश्तकारों के लिए प्रतिकूल या शोषणकारी था। इस दृष्टि से यह तर्क दिया गया है कि भले ही, काश्तकारी की तकनीक रूप से अनुमति दी जाती है, परन्तु काश्तकारों को दीर्घकालिक और संरक्षित अधिकार देने के प्रावधान करने का वैसा ही प्रभाव होगा जैसा कि काश्तकारी पर प्रतिबंध का हुआ है। इसे ध्यान में रखते हुए यह उल्लेख किया गया है कि कुछ परिस्थितियों के अधीन काश्तकारी समाप्त करने की अनुमति होनी चाहिए: जैसे (i) काश्तकार कानून के अधीन निर्धारित समय के अंदर किराये का भुगतान करने में असफल रहा है, (ii) यह सिद्ध हो

जाए कि काश्तकार भूमि का उपयोग कृषि से भिन्न अन्य प्रयोजनों के लिए कर रहा है; (iii) भूमि को खेती के अनुपयुक्त बना दिया है, (iv) काश्तकार स्वयं खेती नहीं कर रहा है, और (v) पट्टे की अवधि की शर्त या तो समाप्त हो गई है या जमींदार स्वयं खेती करना चाहता है। इस तर्क के गुणदोषों की मान्यता में कुछ राज्यों ने विनिर्दिष्ट परिस्थितियों के अधीन काश्तकारी समाप्त करने के प्रावधान किए हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत की प्रति व्यक्ति कृषि भूमि के अनुपात को देखते हुए काश्तकारी पूरी तरह से समाप्त नहीं की जा सकती है या नहीं होनी चाहिए। कुछ अध्ययन भी हुए हैं जिनसे प्रकट होता है कि काश्तकारी पर पूर्ण प्रतिबंध गरीबों को बुरी तरह से प्रभावित करेगा। अनुभवजन्य आंकड़े दर्शाते हैं कि काश्तकारी के अधीन कुल क्षेत्रफल में 1962 और 1971 के बीच कोई खास अंतर नहीं आया है (यह लगभग 10.6 प्रतिशत) परन्तु 1981 में तेजी से गिरकर 7.2 प्रतिशत पर आ गया (तालिका 5.1)। यद्यपि 1981-91 की अवधि के दौरान ''काश्तकारी के अधीन क्षेत्रफल'' में वृद्धि हुई है। (1981 में 7.2 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 8.3 प्रतिशत), ''जोतों की संख्या'' में प्रवृत्तियों को देखते हुए 1971-91 की अवधि में काश्तकारी जोतों की संख्या में स्पष्ट गिरावट है।

तालिका 5.1: भारत में भूमि पट्टे में परिवर्तन (प्रतिशत)

किसानों की श्रेणी	1961-62		1970-71		1980-81		1990-91	
	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल
छोटे	25.1	14.0	27.8	14.6	17.9	8.5	14.9	8.5
सीमांत	24.1	16.6	27.0	18.9	14.4	9.7	9.3	8.7
मध्यम	20.5	9.6	20.9	8.7	14.5	6.6	13.1	6.9
बड़े	19.5	8.3	15.9	5.9	11.5	5.3	16.7	19.4
सभी साइज	23.5	10.7	25.7	10.6	15.2	7.2	11.0	8.3

स्रोत: NSSO रिपोर्ट सं॰ 407, 48वां दौर

नोट: प्रतिशत कुल भूमि के हैं। संख्या का संबंध ''जोतों की संख्या'' से है।

भू-धारण सीमा

भू-धारण सीमा पर कानून दो चरणों (1955-72 और 1973 से आज तक) में क्रियान्वित किये गये हैं। भू-सीमा संबंधी नीति तीन आर्थिक अनिवार्यताओं द्वारा नियंत्रित थी- जैसे प्रतिलोमी आकार-उत्पादकता संबंध (स्पष्ट था- अर्थात् जोत का आकार जितना बड़ा होगा, उत्पादकता उतनी ही कम होगी); (ii) ऐसे भी साक्ष्य मिले हैं कि विशाल भूमिधारक कुछ भूमि को पड़ती छोड़ देते हैं जिससे भूमि उपयोग अलाभकर होता है; (iii) और गरीबों की बड़ी संख्या अपनी उत्तरजीवितता के लिए केवल भूमि पर निर्भर होती है, अत: उपलब्ध अतिरिक्त भूमि न्यायसंगत ढंग से वितरित होनी चाहिए जिससे सामाजिक न्याय और समानता को तकाजे पूरे हो सकें। इसे

ध्यान में रखते हुए, पहली योजना ने ''आर्थिक रूप से व्यावहारिक स्वयं कृषित जोत'' का आकार लगभग दो एकड़ नियत किया था। जैसा कि इकाई 2 में उल्लेख किया गया है, भारत में ''छोटा और सीमांत किसान उन किसानों को कहा जाता है जिनके पास क्रमशः 1 से 2 हेक्टेयर भूमि और एक हेक्टार/से कम भूमि होती है।'' चूंकि 1 हेक्टार 2.5 एकड़ के बराबर होता है इसलिए, पहली पंचवर्षीय योजना द्वारा दी गई आर्थिक रूप से व्यावहारिक जोत की परिभाषा का अभिप्राय है कि किसान को कम से कम एक सीमांत किसान अवश्य होना चाहिए। ''भूमि के आकार के अनुसार प्रकार्यात्मक जोतों का वितरण'' पर आंकड़े दिखाते हैं कि भारत में सीमांत किसानों संख्या 1980-81 में 56.4 प्रतिशत से बढ़कर 1995-96 में 61.6 प्रतिशत और 2000-01 में 63.00 हुई। (तालिका 5.2) छोटे किसानों का प्रतिशत भी बढ़ रहा है, परन्तु सीमांत किसानों की तुलना में ये वृद्धि कम रही है। मध्यम, बड़े और बहुत बड़े वर्गों की जोतों का अनुपात ह्रासमान हैं। ''सीमांत किसानों की प्रवृत्ति संभवतः 1980-1990 के दशक के बाद की अवधि में ''स्वामित्व अधिकारों'' के क्रियान्वयन के प्रभाव के सूचक हैं।

तालिका 5.2: प्रक्रियात्मक जोतों का आकार वितरण (प्रतिशत)

किसानों/जोतों की श्रेणी	1980-81	1995-96	2000-01
सीमांत (1 हेक्टेयर से कम)	56.4	61.6	63.0
छोटा (1 से 2 हेक्टेयर)	18.1	18.7	18.9
मध्यम (2 से 4 हेक्टेयर)	8.0	7.0	6.6
बड़ा (4 से 10 हेक्टेयर)	0.1	6.1	5.4
बहुत बड़ा (10 हेक्टेयर से अधिक)	2.4	1.2	1.0

स्रोतः कृषि मंत्रालय 1994-95 और कृषि संबंधी आंकड़े 2007

भूमि सुधार के इस भाग के क्रियान्वयन को (i) पूर्वव्यापी अंतरण (ii) छूटों की बहुत बड़ी संख्या (iii) भूमि सीमा नियतन का आधार आदि जैसे शब्दों में बचाव का रास्ता या अस्पष्टता के कारण धक्का लगा है। इस प्रकार अतिरिक्त भूमि अधिग्रहीत करना निष्प्रभावी था इसलिए पुनर्वितरण भी निरर्थक रहा। जिन मुख्य कारकों के कारण क्रियान्वयन की घटिया स्थिति हुई है, ''मुद्दे का ग्राम स्तर पर राजनीतिकरण'' है। बहुत से आलोचकों का मत है कि सीमाबंदी के संपूर्ण कार्य ने केवल भूमि बाजार को बिगाड़ने का काम किया है। इसलिए वे तर्क देते हैं कि सीमाबंदी और काश्तकारी कानून को एकदम उन्मूलन या धीरे-धीरे समाप्त करते हुए बाजार की शक्तियों को पूरी गतिविधियां जारी रखने की अनुमति देना आवश्यक है। अतिरिक्त कृषि भूमि के पुनर्वितरण में सीमित सफलता के बावजूद, सीमाबंदी कानून कुछ ही लोगों के हाथ में भूमि का संकेंद्रण रोकने में सफल हुए हैं।

5.4.4 अधिक छोटी जोतों की चकबंदी

भूमि सुधारों के सभी घटकों में छोटी भूमि जोतों की चकबंदी पर सबसे कम ध्यान

दिया गया है। 1970 के दशक के प्रारंभ में NSS रिपोर्ट ने प्रेक्षण किया कि ''बहुत से भू-स्वामियों ने'' गांव भर में अलग-अलग स्थानों में बिखरे हुए भूमि के कई टुकड़ों को अपने अधिकार में रखा। इसे ध्यान में रखते हुए छोटी जोतों की चकबंदी पर कानून 15 राज्यों द्वारा अंगीकार किया गया था, परन्तु इन कानूनों का क्रियान्वयन ''राजनीतिक इच्छा के अभाव और प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण असफल रहा।'' जिन तीन राज्यों में चकबंदी कानून को पर्याप्त रूप में बेहतर क्रियान्वयन हुआ, वे हैं: पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश। यह उल्लेख किया गया है कि स्वाभाविक रूप से जनसंख्या और आर्थिक दबावों के कारण भूमि के टुकड़े होते गए और सीमांत जोतों की संख्या में वृद्धि होती गई। इस कारण से यह बताया गया है कि एक हेक्टयर से भी कम क्षेत्रफल की जोतों और विशेषकर 0.5 हेक्टार से कम की जोतों की संख्या इन वर्षों में बढ़ती रही है। यद्यपि यह प्रक्रिया गंभीर चिंता उत्पन्न कर रही है, (महाराष्ट्र और कर्नाटक में) कुछ छुटपुट ऐसे उदाहरण है जहां हाल ही में छोटे और सीमांत किसानों ने एक साथ मिल कर सामूहिक रूप में स्ट्रॉबेरी, टमाटर, गुलाब, प्याज आदि की खेती आरंभ कर और ठेकेदार से उत्पाद की पहले से ही तय कीमत पर ''ठेके के आधार'' पर खेती की। इसलिए यह दृष्टिकोण ऐसी निवेश प्रधान फसलें पैदा करने के लिए व्यावहारिक द्वार सिद्ध हुआ है। यह प्रयोग सीमाबंदी का संस्थागत विकल्प प्रदान करता है।

5.4.5 गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार के प्रभाव

भूमि सुधार उपायों के क्रियान्वयन की सफलता का निर्धारक राजनीतिक कारकों को अधिक मानते हुए स्वतंत्र अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किए गए कई अध्ययनों ने प्रकट किया है कि पश्चिम बंगाल और केरल की वामपंथी सरकारों द्वारा गरीबी और उत्पादकता पर भूमि सुधार उपायों के अधिक सुदृढ़ अनुकूल प्रभाव देखे गए हैं। इन अध्ययनों के साक्ष्य यह भी प्रकट करते हैं कि वामपंथी शासित राज्यों में क्रियान्वयन की सुदृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति ने भूमि सुधारों पर स्पष्ट छाप छोड़ी है। कई अन्य अध्ययन भी हुए हैं जिन्होंने उल्लेख किया है कि 1991 के बाद के वर्षों में ''कृषि आधारभूत संरचनाओं में कम सार्वजनिक निवेश के कारण कृषि उत्पादकता/विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है''। ये प्रभाव भूमि सुधार नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए नये सार्वजनिक निवेश और (राजनीतिक संस्थाओं सहित) संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता पर बल देते हैं।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) भारत में भूमि सुधार कानून के चार चरण बताइए।

.....

.....

.....

.....

2) काश्तकारी सुधार के पांच मुख्य घटक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

3) वे पांच परिस्थितियां बताइए जिनके अधीन ''काश्तकारी की समाप्ति'' की अनुमति देने की मांग की जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

4) वे तीन कारक बताइए जिनका सीमाबंदी के क्रियान्वयन के घटिया निष्पादन में योगदान रहा है।

.....

.....

.....

.....

5) भारत में स्वतंत्र अनुसंधानकर्ताओं के अनुभवजन्य साक्ष्य द्वारा भूमि सुधार प्रयासों के क्रियान्वयन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले दो मुख्य निर्धारक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

5.5 वर्तमान बहस और भावी संभावनाएं

भूमि सुधार क्रियान्वयन की कई दशाब्दियों के बाद भी समुचित भूमि रिकार्ड नहीं होना एक बड़ी समस्या बनी हुई है। भूमि रिकार्ड के कंप्यूटरीकरण के लिए किए गए प्रयास आंशिक रूप में उपयोगी हुए हैं। भूमि बाजार के उदारीकरण के लिए आम सर्वसम्मति है। इस विचार के कारण ''भूमि की उच्चतम सीमाएं'' बढ़ाने पर भी बहस चल रही है आशा है कि बड़े फार्म निवेश आकर्षित करेंगे। इसे वर्तमान स्थिति में महत्त्वपूर्ण समझा गया है, जहां विश्व बाजार में प्रभावशाली सहभागिता समय की आवश्यकता हो गई है। इसके लिए ''ठेका कृषि'' व्यवस्था से कर्नाटक और महाराष्ट्र में संचालित कुछ प्रयोगों के अनुसार उत्पादकों के औपचारिक/अनौपचारिक

समूह बनाने के लिए छोटी सीमांत जोतों का व्यवसायिक एकीकरण आवश्यक बताया गया है ताकि उत्पादन का विपणन, जोखिम सुरक्षा आदि सुनिश्चित किया जा सके।

एक-एक-एक संविदाओं में काश्तकारों के पक्ष में जमींदारों का अपना हक खो जाने का भय और भूमि पट्टे पर गंभीर दबावों के कारण, गरीब पट्टेदारों की ''भूमिधारण असुरक्षा'' के बीच एक निश्चित विरोधाभास है। इसलिए बारहवीं योजना में सरकार के विचार के लिए सुविधावंचित किसानों पर कार्यदल द्वारा सार्वजनिक भूमि बैंक (LD) के विकल्प का सुझाव दिया गया है। इसके अधीन अपनी भूमि को पट्टे पर देने के इच्छुक भू-स्वामी से PLB भूमि पार्सल की 'जमा' (डिपोजिट) ले सकेगा, इसमें नियत अवधि के बाद व्यक्ति को अपनी जमा भूमि वापस लेने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। PLB को भूमि की जमाएं पूर्णत: स्वैच्छिक होंगी, जो किसान अपनी भूमि जमा नहीं करना चाहता है, वह सीधे अपनी भूमि पट्टे पर देने के लिए स्वतंत्र होगा। जमाकर्ताओं को दिए जाने वाले प्रोत्साहन के रूप में छोटे से भुगतान करते हुए (पंचायत क्षेत्र में विद्यमान औसत भूमि किराए के प्रतिशत के आधार पर प्राप्त होने वाले भुगतान की दर) PLB अपने कमांड के अधीन पदनामित श्रेणी के किसानों, जैसे सीमांत किसान, महिला, दलित, जनजाति आदि को भूमि पट्टे पर देगा। जमाओं को आकर्षित करने के लिए सुझाए गए अन्य प्रोत्साहनों में शामिल हैं: (i) न्यूनतम लाभ, यहां तक कि पड़ती भूमि के लिए भी (ii) उस भूमि के लिए अतिरिक्त किराया जो पट्टे पर दी जाती है। (iii) MGNAREGA या अन्य उपायों आदि के अधीन शुरू किए जाने वाले मृदा संरक्षण कार्यों द्वारा जमा की गई भूमि का विकास। भूमि में पट्टे पर दी गई भूमि PLB लाभ प्रदान कर सकता है, जैसे (i) निर्धारित अवधि के लिए गारंटीशुदा पट्टा, (ii) भूमि की गुणवत्ता से किराये को जोड़ना (ii) पट्टे पर विचार विमर्श में सामान्यतया छोटे किसानों के सामने आने वाली अनिश्चितता और कम सौदा लागत कम करना; आदि। इस प्रकार PLB भूमि आपूर्ति और मांग का मिलान करने में सहायता होगा। आपूर्ति की ओर से यह भूस्वामियों की चिंताओं का समाधान करेगा और अल्प प्रयुक्त या पड़ती भूमि को कृषि के अंतर्गत लाएगा। मांग की ओर से यह छोटे/सीमांत किसानों को ऐसी भूमि सुलभ करेगा जिसके लिए वे स्वयं खुले बाजार में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते हैं। प्रस्ताव, यदि क्रियान्वित किया गया, तो उस खाई को पाटने में उपयोगी होगा जो इस समय भूमि सुधारों और कृषि विकास के क्षेत्र में गतिरोध तोड़ने के रास्ते में विद्यमान है।

5.6 सारांश

इकाई के प्रारंभ में स्वतंत्रता के समय विरासत में प्राप्त कृषि सेक्टर की स्थिति की संक्षेप में समीक्षा की गई है और इस दृष्टि से स्वतंत्रता के तुरन्त बाद अर्थव्यवस्था की कृषि संबंधी नींव के नया रूप देने में नए भारत सरकार के सामने खड़ी बड़ी चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है। सरकार द्वारा अपने योजना कार्यों के माध्यम से प्रारंभ किए गए विभिन्न पहल कार्यों की संक्षेप में समीक्षा की गई है। काश्तकारी और सीमाबंदी कानूनों द्वारा उसके क्रियान्वयन के पांच दशकों के दौरान कृषि संबंधों की पुनर्संरचना के लिए किए गए विशिष्ट पहल कार्यों और बाद में नीतिपरक आग्रह के पुन:स्थापन की क्या आवश्यकता है, इस वर्तमान चिंतन का आकलन किया गया

है। यथापेक्षित पहचान किए गए वर्तमान नीति कार्यवाही के लिए मुख्य क्षेत्रों में शामिल है: कृषि पुनर्संरचना पर किसी भी उल्लेखनीय सफलता के लिए राजनीतिक और संस्थागत पहलुओं से संबंधित गंभीर क्रियान्वयन मुद्दे अंतर्निहित होते हैं, पारस्परिक संपूरक तरीके में ''राजनीतिक और संस्थागत सुधारों'' दोनों के लिए उपाय प्रारंभ करना आवश्यक है।

5.7 शब्दावली

भूमि सुधार : इस शब्द का संबंध भू-स्वामित्व पर कानूनों, विनियमों और प्रथाओं का परिवर्तन करने से है। यह भूमि के कब्जे और प्रयोग को नियंत्रित करने वाले विद्यमान संस्थागत व्यवस्थाओं को संशोधित करता है या प्रतिस्थापित करता है। यह गंभीर राजनीतिक प्रक्रिया है जिसके कारण इसकी सफलता के लिए ''राजनीतिक सुधारों'' और ''संस्थागत सुधारों'' दोनों की साथ-साथ अपेक्षा होती है।

काश्तकारी सुधार : यह भूमि सुधार का घटक है जिसमें काश्तकारी संबंध का पहलू विनियमित किया जाता है। ''काश्तकारी दक्षता'' परिकल्पना नामक ''शैलीकृत'' तथ्य के कारण इसका समर्थन किया जाता है, जो कहता है कि सुरक्षित काश्तकारी की शर्तों के अधीन किसान की दक्षता और भूमि की उत्पादकता दोनों सुधरेंगे।

जोत आकार परिकल्पना : परिकल्पना कहती है कि जोते के आकार का उत्पादकता से प्रतिलोम है। अर्थात् जैसे-जैसे जोत का आकार बढ़ता है, उससे उत्पाद घटेगा। ये परिकल्पना भारत में खेती के बारे में दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों पर आधारित है; प्रति फसल उपज की इकाई जोत के आकार में वृद्धि के साथ घटती है और जब भूमि सहित सभी निवेश कारकों को ध्यान रखा जाता है, जोत उत्पादन से सकल लाभ भिन्न आकार श्रेणियों में स्थिर रहता है। इसलिए परिणाम यह होता है कि उपज, रोजगार और समग्र उत्पादन की दृष्टि से छोटे खेत अधिक दक्ष उत्पादन इकाइयां हैं। परन्तु यह आवश्यक है कि किसी स्तर विशेष से जोत के आकार को इतना नहीं घटाया जाए कि प्रचालक के लिए अपने तथा अपने परिवार

के लिए पूरे समय का रोजगार पाना तथा न्यूनतम उपयोग की आवश्यकताएं पूरा करना कठिन हो जाए। (NCA, 1976, पृष्ठ 67)

संस्थागत सुधार : इसका संबंध उन नियमों और विनियमों के वृहद् समूह से है जो सामाजिक-आर्थिक क्रियाकलाप नियंत्रित करते हैं। सुसंरचित और सुस्थापित संस्थागत व्यवस्थाओं के अधीन आर्थिक क्रियाकलाप के संचयी कार्यसंचालन से इष्टतम परिणाम या निष्कर्ष निकलने की आशा की जाती है।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Besley, T. & Burgess, R. (2000): Land Reform, Poverty Reduction and Growth: Evidence from India, Quarterly Journal of Economics, 15 (2), May: 389-430.

Maitreesh Ghatak, Land Reform in India, in The Oxford Companion to Economics in India, ed. by Kaushik Basu, OUP. (http:/k/kecon.lse.ac.uk/kstaff/kmghatak/klandref.pdf)

Maitreesh Ghatak and Sanchari Roy (2007): Land Reform and Agricultural Productivity in India: A Review of the Evidence, Oxford Review of Economic Policy, Volume 23, Number 2, pp. 251-269.

National Commission on Agriculture (NCA) (1976): Part XV, Agrarian Reforms, Government of India, New Delhi.

Raj Krishna (1961): Land Reform and Development in South Asia, in W. Frochlich (ed.) Land Tenure, Industrialisation and Social Stability: Experiences and Prospects in Asia, Wisconsin, USA, The Marquette University Press.

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

1) भाग 5.2 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) भाग 5.2 तीसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) भाग 5.3 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

4) भाग 5.3 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 5.4.1 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 5.4.1 दूसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 5.4.2 पहला और दूसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 5.4.2 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

5) उपभाग 5.4.2 अंतिम अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 5.4.3 पहला अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 5.4.3 दूसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 5.4.3 तीसरा अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 5.4.3 पांचवां अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।

5) उपभाग 5.4.5 अनुच्छेद देखिए और उत्तर दीजिए।